जन्म शताब्दी पुस्तकमाला- 07

बच्चों के व्यक्तित्व का विकास कैसे करें ?

(प्रवचन)



- श्रीराम शर्मा आचार्य

बच्चों के व्यक्तित्व का विकास कैसे करें?

देवियो! भाइयो!!

माँ अपने बच्चे के निर्माण करने के संबंध में अपने कर्त्तव्यों को प्राय: पाँच वर्ष तक पूरा कर लेती हैं। पेट में जिस दिन से बच्चा आता है, उसी दिन से माँ का कर्त्तव्य शुरू हो जाता है। बालक का स्वास्थ्य और बालक का मस्तिष्क विकास के लिए अपने चिंतन और उसको अपने आहार-विहार में जिस तरह संयम बरतना चाहिए, यह क्रिया पाँच साल तक जारी रहती है; क्योंकि माता का ही बच्चे से सबसे अधिक संबंध रहता है। माँ के पास वह स्वयं रहता है, खेलता भी वह माता के पास है, बातचीत भी वह माता से ही ज्यादा करता है। गोदी में भी वह माँ के पास आता है। माता का सबसे ज्यादा प्रभाव बच्चे पर तब तक होता है, जब तक उसकी उम्र पाँच साल की होती है। पाँच साल के बाद

शिक्षण की जवाबदारी दूसरे लोगों के कंधों पर चली जाती है। माँ की, अभिभावकों की जिम्मेदारी तो हमेशा ही रहेगी, उसमें तो कमी क्या हो सकती है, लेकिन मुख्यतया उसकी जिम्मेदारियाँ अभिभावकों पर चली जाती हैं, जिनमें पिता मुख्य है।

पहले ही कहा जा चुका है कि शिक्षण स्कूलों में भले ही हो, लेकिन व्यक्तित्व का निर्माण घर की पाठशाला में ही होता है। घर को एक पाठशाला के रूप में विकसित किया जाना चाहिए, अगर हमको भावी पीढ़ी को अच्छा बनाना है। माता को अपना स्वभाव, पिता को अपना स्वभाव, घर वालों को अपना स्वभाव, काम करने का ढंग, घर की व्यवस्था तथा वातावरण ऐसे बनाना चाहिए, जिसमें कि गीली मिट्टी के तरीके से बने हुए बालक ढाँचे में ढलते हुए चले जाएँ। मान लो लोहे की गोलियाँ ढालनी हैं, तो उसकी सारी मशीनें, ढाँचे और डाइयाँ ऐसी बनाई जाएँगी, जो पिघला हुआ लोहा जहाँ से जाए, जिस नाली में

होकर के जाए, बस वो गोली में बदलता हुआ चला जाए, नीचे निकलता हुआ चला जाए, अगर मशीन में नुक्स हुआ और मशीन ठीक नहीं होगी तो गोलियाँ साफ नहीं निकलेंगी, टेढ़ी हो जाएँगी और खराब हो जाएँगी। बच्चों को किस तरीके से बनाया जाना है ? उनको सुयोग्य बनाया जाना है या बुरा। उनको सुसंस्कृत बनाया जाना है या कुसंस्कारी। इसके लिए केवल वाणी के द्वारा दिया जाने वाला शिक्षण पर्याप्त नहीं है। वाणी के द्वारा दिए गए शिक्षण को केवल कान ग्रहण करते हैं। यह ज्ञान स्वभाव में नहीं आता, अंतश्चेतना में नहीं आता। अंतश्चेतना में वो बातें आती हैं, जिनको अकसर लोग देखा करते हैं, समझते हैं और उसी को लोग सही मानते हैं। केवल कहने से काम नहीं चलेगा स्वयं के व्यवहार द्वारा बच्चों को सिखाया जा सकता है। हमको जो कुछ भी बालकों को बनाना है, घर का वातावरण ठीक वैसा ही बनाया जाना चाहिए। इसके लिए पहले अपने आपको ढालना चाहिए,

पिता को, माता को, चाचा को, ताऊ को, बहिनों को। अगर वो नहीं ढले हैं, तो अभिभावकों का काम है कि एक बच्चे के लिए ही सही या अपने परिवार के बच्चों के लिए सही घर के वातावरण को व्यवस्थित करें। अपनी दिनचर्या ठीक बनाएँ। उठने-बैठने का क्रम ठीक बनाएँ। सभ्यता और संस्कृति का क्रम ठीक बने। एकदूसरे के साथ में सभ्य व्यवहार करें। ऐसा नहीं हो कि कोई किसी के साथ में बुरा व्यवहार करे और बच्चों पर उसकी छाप पड़े। इसीलिए घर वस्तुतः एक पाठशाला बनाया जाना चाहिए। बच्चे पैदा करने हैं तो बच्चों को सुविकसित-सुसंस्कृत बनाया जाना चाहिए। बच्चों को कूड़े-कबाड़े के तरीके से पालना है, चूहे-बिल्ली के बच्चों के तरीके से बच्चे पैदा करने हैं, तब तो वो कुछ भी बन जाएँ, तो बात अलग है। तब तो कुछ कहा नहीं जा सकता। घर का कोई भी आदमी चाहे जैसे रहे, चाहे जो कहे, चाहे जिस तरीके से सोए, चाहे जैसा आचरण करे और फिर

चाहे कि बच्चे अच्छे बने, असंभव हैं। संभावना ज्यादा इसी बात की है कि वो बुरे ही बनेंगे या वो खोटे आदमी बनेंगे। घर के वातावरण के लिए अभिभावकों की बहुत जिम्मेदारी है।

स्कूलों में तो जो बच्चे पढ़ने के लिए जाते हैं, प्राय: ४५-४५ मिनट के ४-५ घंटे पढ़ते हैं और चार पाँच घंटे के बाद घर आ जाते हैं। बाकी सारे समय घर पर ही रहते हैं तो अधिक प्रभाव तो घर के वातावरण का ही पड़ता है। बीस घंटे-अठारह घंटे तो वो घर में ही रहते हैं। असली पाठशाला तो वही है। नकली पाठशाला स्कूल है। स्कूल में बच्चे को पढ़ा करके कोई आदमी लंबे-चौड़े ख्वाब देखना चाहता हो, तो वो गलत है। पहले जमाना अलग था, उस जमाने में अध्यापक जितना ध्यान पढ़ाई-लिखाई पर देते थे, उससे सौ गुना ध्यान इस पर देते थे कि जो बच्चे हमारे यहाँ पढ़ने के लिए आते हैं, उन पढ़ने वाले बालकों का को संस्कारवान कैसे बनाया जाए? स्वभाव अच्छा कैसे बने? कर्मठ कैसे बने? उसके

विचार करने का क्रम क्या हो ? काम करने की शैली क्या हो ? उसका रहन-सहन क्या होना चाहिए है ? उसको कैसे सुधारा जाए ? वहाँ पढ़ाई का मूल उद्देश्य यही होता था। जो मामूली ज्ञान है, उसको तो लोग वैसे ही पढ़ा देते थे। एक-दो घंटे रोज पढ़ा दिया, काफी है। हिसाब पढ़ा दिया, एक घंटे रोज पढ़ा दिया, इतने समय में बस आदमी हिसाब का जानकार हो जाएगा। इतिहास है, दूसरी चीजें हैं, पढ़ना-लिखना है, अक्षर ज्ञान है, व्याकरण है, यह बस छोटी-छोटी बातें हैं। इनका काम भी जीवन में कितना आता है ? जरा सा काम आता है, उतनी जानकारियाँ एक-दो घंटे में रोज दे देते थे और पढ़ाई चलती थी। बाकी पढ़ाई उस वक्त चला करती थी। अभिभावक इसी तरफ ध्यान देते थे और अभिभावकों के लिए आवश्यक था, लेकिन अब घर के वातावरण बिगड़ते चले जा रहे हैं और पीढ़ियाँ बिगड़ती चली जाएँगीं। इसीलिए स्कूली शिक्षण ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि हमको घर के वातावरण को और अभिभावकों को,

घर के रहन–सहन को सुधारना चाहिए, अगर हमको अगली पीढ़ियों को अच्छा बनाना है तब। इसके बाद! इसके बाद स्कूल के अध्यापकों का नंबर आता है। अध्यापक माता–पिता से श्रेष्ठ माने गए हैं। गुरु, गुरु को पिता से भी श्रेष्ठ माना गया है, माता से भी श्रेष्ठ माना गया है। क्यों? इसलिए माना गया है कि इन अभिभावकों को अक्षर ज्ञान का समय नहीं मिलता। समय भी मिलता है, तो उनके पास योग्यता नहीं होती। योग्यता भी होती है, तो थोड़ी देर के लिए बच्चों से दस–बीस मिनट के लिए मिल लेते हैं, अन्य धंधों में लग जाते हैं। अध्यापक ही एक ऐसा है, सुसंस्कृत व्यक्ति, जिसके पास चार–पाँच घंटे रोज स्कूल में रहना पड़ता है। उसकी छाप आगे भी पड़ी रहती है। वो कल की बात को पूछ भी सकता है। अगली बात को बता भी सकता है। माँ–बाप के बाद में तीसरा नंबर जो पड़ता है, अध्यापकों का पड़ता है, छोटे बच्चों के ऊपर क्योंकि उसके लिए शासक वही है, मार्गदर्शक वही है, राजा वही है।

उसका बहुत कुछ असर होता है बच्चों के दिमाग पर। और जो असर अध्यापक का है, उस असर को किस तरीके से इस्तेमाल किया जाए, ये अध्यापकों की बुद्धिमत्ता के ऊपर है।

एक विष्णु शर्मा थे। एक राजा की ये शिकायत थी कि उसके लड़के वाहियात हो गए, उजड्ड हो गए। वो पढ़ते-लिखते नहीं हैं और उनके काबू में नहीं आते। विष्णु शर्मा ने कहा कि हम पढ़ा देंगे आपके बच्चों को। बच्चों को बुलाया, उन्हें पढ़ने के लिए पट्टी-कलम दी, वो तो भाग गए, नहीं पढ़े। तब उन्होंने कहा एक और विधि है, अभी हम बताते हैं। उन बालकों को बुलाया और उनसे कहानी कहना शुरू कर दिया। बहुत-बहुत बढ़िया मजेदार कहानियाँ कहीं। बच्चों को पढ़ने में बहुत आनंद आया, बहुत मजा आया और कहानियों को सुनने लगे, और कहानियों को सुनते-सुनते बालक इतने निष्णात हो गए राजनीति और अर्थ व्यवस्था में कि उनके पिता को बहुत प्रसन्नता हुई। उन्होंने एक लंबी-चौड़ी रकम उस

विष्णु शर्मा को दी। उस विष्णु शर्मा की लिखी हुई किताबों का नाम पंचतंत्र-हितोपदेश है, जो संस्कृत की बहुत महत्त्वपूर्ण पुस्तकें हैं।

इस तरीके से अगर अध्यापक चाहे, तो उसी पढ़ाई में से, जिसको दैनिक जीवन में पढ़ाना होता है, उसमें से भी वह कितना बड़ा काम कर सकता है, कितनी बड़ी व्यवस्था और जिम्मेदारी उठा सकता है, ये होना ही चाहिए। ये होना ही चाहिए अध्यापक को वेतन मिलता है और सरकारी कैरिकुलम पूरा करना पड़ता है और पाठ्यक्रम पास कराना पड़ता है और बच्चों को डिवीजन लाने के लिए मेहनत करनी पड़ती है, ठीक है। वह तो सब किया ही जाना चाहिए। इसके लिए अलग से कुछ काम करना नहीं है। इतिहास पढ़ाया जाए, इतिहास के निष्कर्ष इस तरीके से पढ़ाए जाए कि उन निष्कर्षों का लाभ बच्चों को मिले। हिस्ट्री से लेकर अनेक भाषाओं में पढ़ाए जाने वाले अनेक पाठ ऐसे आते हैं, जिनको इस ढंग से, इस रंग से अध्यापक पढ़ाए कि उसी में शिक्षण

की पद्धति भरी पड़ी हो। फिर इसके अलावा भी थोड़ा-बहुत तो समय अध्यापक अपने बच्चों के लिए निकाल ही सकता है। थोड़ा वक्त तो दे ही सकता है। एक पंद्रह मिनट-आधा घंटा उनसे मिल लिया जाए और उनकी कष्ट-कठिनाइयों को पूछ लिया जाए, घरेलू समस्याओं को पूछ लिया जाए। आजकल उनके दिमाग में क्या खुराफात चल रही है, उसको समझ लिया जाए। उसके मुताबिक सलाह-मशविरा दिया जाए। सफाई रखने की शिक्षा, अनुशासन की शिक्षा, बड़ों के पैर छूने और बड़ों को प्रणाम करने की शिक्षा। इस तरीके से अध्यापक चाहे तो बहुत आसानी से उन्हें प्रेरित कर सकता है और जरा भी उस पर दबाव नहीं पड़ सकता है। इसके लिए कोई अतिरिक्त भार उसको अपने पर उठाना नहीं पड़ता। यदि अध्यापक चरित्रवान हों, अध्यापक राष्ट्रसेवी हों, अध्यापक इस प्रवृत्ति की ओर ध्यान देते हों और अध्यापक इस बात को समझते हों कि हमें केवल पढ़ाना, पढ़ाने भर के लिए ही नहीं है,

हम दूसरे नौकरों के तरीके से नौकर नहीं हैं। अध्यापक की नौकरी केवल नौकरी नहीं हो सकती। इसलिए हम गुरु मानते हैं उसको। इसलिए उसका बड़ा ऊँचा सम्मान था समाज में और रहना चाहिए और रहैगा। वेतन कितना मिलता है, उसके ऊपर कोई दारोमदार नहीं है।

चाणक्य, चाणक्य को कौन वेतन देता था? केवल फटे-पुराने कपड़े पहनते थे और जंगलों में रहते थे और फूस की झोंपड़ी में रहते थे। उनकी आवश्यकता कम थी और उनको जो गुजारे को मिलता था, कम मिलता था। लेकिन इससे चाणक्य की महानता पर फरक क्या आया? चाणक्य नालंदा विश्वविद्यालय की अनेक फैकल्टियों का डीन और उस तरह का जिसकी शिक्षा का कोई ठिकाना नहीं। बड़ा अध्ययनशील, नालंदा का विश्वविद्यालय, नालंदा का पुस्तकालय की सूझबूझ उसी की थी। गरीब रहने से और कम खरच मिलने से हमको कर्त्तव्य को छोड़ देना चाहिए, ये क्या बात? कर्त्तव्य! कर्त्तव्य को

पूरा करना अलग बात है। वह हमारी आध्यात्मिक, नैतिक, राष्ट्रीय और नागरिक जिम्मेदारी है। वेतन हमको कम मिलता है, तो यह सरकार से कहना चाहिए, लड़ना-झगड़ना चाहिए या कमाई के दूसरे सोर्स ढूँढ़ने चाहिए। जो भी करना चाहिए क्योंकि हमको कम वेतन या ज्यादा वेतन मिलता है, इसलिए कम पढ़ाएँ या ज्यादा पढ़ाएँ, अपनी जिम्मेदारियों को कम करें या ज्यादा करें, ये तो खराब बात है। कम वेतन मिलता है तो वेतन के लिए दूसरे तरीके अख्त्यार करने चाहिए या इस काम को छोड़ देना चाहिए, दूसरा ज्यादा फायदे का काम करना चाहिए। लेकिन हम इस काम को छोड़ेंगे नहीं और इसे अच्छे तरीके से करेंगे नहीं, यह तो देश के साथ में विश्वासघात हो गया। अपनी आत्मा के साथ विश्वासघात हो गया और बच्चों के साथ विश्वासघात हो गया। अध्यापक को यह शोभा नहीं देता। ये दलील उसकी बिलकुल नाकारा है कि हमको कम वेतन मिलता है, इसलिए हम बच्चों के शिक्षण पर ध्यान नहीं देते।

तो फिर आपने क्यों की थी नौकरी ? पहले ही देख लेते कि यह काम कम वेतन का है तो हम दूसरा काम करेंगे। जब आपने जिम्मेदारी उठाई है, कसम खाई है, शपथ ली है और आपने जिम्मेदारी वहन की है, तो फिर आप गड़बड़ क्यों फैलाते हैं ? गड़बड़ नहीं फैलाई जानी चाहिए। किसी वर्ग को नहीं फैलानी चाहिए, खास तौर से अध्यापकों को, क्योंकि माँ और बाप के बाद तीसरा नंबर है अध्यापक का।

अध्यापक राष्ट्र के निर्माण करने में कितना योगदान दे सकते हैं, इसका अगर किसी को इतिहास जानना हो, तो भारतवर्ष के इतिहास को देखकर के वे जान सकते हैं। प्राचीन काल के संत और ब्राह्मण अध्यापन का काम करते थे। उनके गाँव-गाँव में स्कूल थे, उनकी पाठशालाएँ थीं। उन्हें दान-दक्षिणा तो मिलती थी। उस दान-दक्षिणा से अपना गुजारा कर लेते थे और उससे केवल अध्यापन का काम करते थे। हर ब्राह्मण अध्यापक होता था, हर संत अध्यापक होता था। बच्चों की शिक्षण एवं स्वास्थ्य

की समस्या जहाँ तक थी, देहातों में रह करके उस काम को ब्राह्मण लोग करते थे, और जो जहाँ तक मनुष्य की आत्मिक और आंतरिक और दूसरी समस्याएँ, गहरी समस्याएँ थीं, और जो बड़े वर्ग के लोग उनके पास आते थे, उनका शिक्षण तंत्र का काम संत महात्मा और साधुओं का था। वो मनुष्यों की मनोवैज्ञानिक, नैतिक और सामाजिक समस्याओं का हल प्रस्तुत करते थे, और छोटी शिक्षाएँ, छोटे जीवन की शिक्षा के लिए ब्राह्मण काम करते थे।

प्राचीन काल में ब्राह्मण और साधु का बहुत सम्मान था। उनको गुरु भी कहते थे, उनके पाँव छूते थे और उनका बहुत ही आदर करते थे। गरीब होते थे तो क्या! और वो गरीब होने पर भी उनका गौरव बहुत ही उच्च कोटि का माना जाता रहा। इसका कारण ये था कि उनकी जिम्मेदारी समाज के अन्य सारे के सारे वर्गों की अपेक्षा ज्यादा मूल्यवान और ज्यादा महत्त्वपूर्ण थी। अध्यापक को अभी मैंने कहा न, माता-पिता के बाद दूसरा नंबर आता है और यों

भी कहा जा सकता है कि माता-पिता से ज्यादा पहला नम्बर आता है। माता-पिता से पहला नंबर है अध्यापक का, क्योंकि माता-पिता के पास जो ज्ञान नहीं है, जो शिक्षा नहीं है, जो योग्यता नहीं है, पढ़ाने का ढंग बेचारों को मालूम नहीं है और मनोविज्ञान की जानकारी नहीं है, शिशु का विकास कैसे होता है, उसको समझ नहीं पाते हैं, वो सारी की सारी योग्यताएँ अध्यापक के पास हैं। अध्यापक चाहें तो थोड़े समय में ही, केवल चार-पाँच घंटे अपने पास रखकर के भी जाने क्या से क्या सिखा सकता है, बालकों को क्या से क्या बना सकता है।

जिस अध्यापक के बच्चे अच्छे नहीं निकल सके, कुपात्र निकले, बुरे काम करने वाले निकले, उच्छृंखल निकले, उसके बारे में दोष किसी को भी दिया जाए, पर अध्यापक उससे बच नहीं सकता। उसने अपने बालकों पर नैतिक दबाव डालने की कोशिश नहीं की। और, और उसने जो शिक्षण दिया, उसके भीतर से भावनाओं को भड़काने वाले और

मनुष्य के अंतरंग को स्पर्श करने वाले शिक्षण उसके पास थे नहीं। अगर उसके पास रहे होते तो जरूर उसने बालकों के कोमल हृदय के अंतरंग को स्पर्श किया होता और उनकी भावनाओं को मोड़ देने में सफल हो गया होता। किसी बच्चे की डिवीजन न आए और एक साल फेल हो जाए, तो उससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं है। बनता-बिगड़ता इससे है कि उसका व्यक्तित्व सही रूप से बन न पाया। इसलिए हमारे अध्यापक का यह बहुत ही पवित्र, पुण्य और एक महान कर्त्तव्य है कि उसने वो काम उठाया है, अपने कंधे पर लिया है, तो उस काम में भूलचूक नहीं करनी चाहिए। सरकारी करिकुलम में भले ही ये बातें न हों और सरकारी पाठ्यक्रमों में यह बात भले ही जुड़ी न हो कि बच्चे को सामान्य ज्ञान के अतिरिक्त उसका नैतिक, बौद्धिक और राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय कर्त्तव्यों को पालन करने के लिए प्रेरणा किस तरीके से दी जाए, पर समाज के लोग या अध्यापक अपने आप इसे कर सकते हैं। यों, यों

सरकार का भी काम है कि जो आजकल की भार स्वरूप, बेकारी पैदा करने वाली, बेरोजगारी बढ़ाने वाली, उच्छृंखलता उत्पन्न करने वाली शिक्षा प्रणाली की प्रक्रिया है, उसको जड़-मूल से बदल दे।

नैतिकता की शिक्षा जिन देशों में होती है, वास्तव में वही देश इस लायक होते हैं, जो अपने भीतर की अंतरंग व्यवस्था को कायम रख सकें और दूसरे देशों का भी मार्गदर्शन कर सकें। इंग्लैंड अपने उद्देश्य की दृष्टि से इस दुनिया में गए-गुजरे जमाने का बेहतरीन देश है और सभ्य देश है और उसने हमारे देश पर कितने वर्षों तक हुकूमत की। ये हुकूमत किस तरह से की, कैसे की, यह मैं नहीं कहता, मैं तो सिर्फ यही कहता हूँ कि इतनी दूर रहने वाले जरा से आदमी सात समुद्र पार करके आ गए और इतने बड़े देश के ऊपर हुकूमत कर सके। उनके अंदर गुणों की विशेषता नहीं है क्या? हम अपने देश की हिफाजत नहीं कर सके, अपनी आजादी की रक्षा नहीं कर सके। वो सात समुद्र पार करके आए।

मैं अँगरेजों की प्रशंसा नहीं करता, मैं तो इस बात की प्रशंसा करता हूँ कि अगर मनुष्य के गुणों का विकास करने का और मनुष्य के चरित्र का विकास करने का क्रम बनाया जा सकता हो, तो छोटे-छोटे व्यक्ति, झोंपड़ों में रहने वाले व्यक्ति भी इतने महान और इतने श्रेष्ठ बन सकते हैं कि क्या कहना! इस सारी की सारी व्यवस्था को बनाना हमारी शिक्षा प्रणाली का काम है। ये सरकार का काम है और सरकार को मजबूर करना चाहिए कि कूड़े-कबाड़े के तरीके से हमारे बालकों का दिमाग खराब करने वाली, पैसा खराब करने वाली और उसके भविष्य को अंधकार में धकेल देने वाली और उसको बेकार का आदमी बना देने वाली, जो शिक्षा प्रक्रिया है, उसको जड़-मूल से काट कर फेंक दिया जाए और बिलकुल ही जिस तरीके से शासन बदल जाते हैं, गवर्नमेंटें बदल जाती हैं, उसी तरीके से यह कूड़ा-कबाड़ा जैसी शिक्षा को खत्म कर दिया जाए। इससे तो अच्छा है कि आदमी बिना पढ़े रहे। बिना पढ़े आदमी आज से

सौ वर्ष पहले थे, लेकिन उनको अपने चरित्र का ज्ञान था, अपने कर्त्तव्यों का ज्ञान था, अपने परिवार का ज्ञान था। आज का पढ़ा-लिखा आदमी सिर्फ नौकरी करना जानता है और पैसे कमाना जानता है। वह अपने माँ-बाप के प्रति कर्त्तव्यों के प्रति भूल, बच्चों के प्रति भूल, समाज के प्रति भूल और अपनी नैतिक जिम्मेदारियों के प्रति भूल; भूलता ही भूलता चला जाता है और मुझे ऐसा मालूम होता है कि न मालूम शिक्षा में दोष है या वातावरण में दोष है। किसमें है दोष, लेकिन ऐसा कोई दोष जरूर है कि अभी भी बिना पढ़े की तुलना में यदि पढ़े को तोला जाए तो वो ज्यादा अनैतिक पाया जाएगा और गलत आदमी पाया जाएगा, देश के लिए हानिकारक पाया जाएगा। अपनी रोटी कमा ले, इससे क्या बना? अपनी रोटी तो कोई भी कमा सकता है। अपनी रोटी तो भेड़िया भी कमा लेता है। अपनी रोटी तो कुत्ता भी कमा लेता है। अपनी रोटी तो चूहा भी कमा लेता है। अपनी रोटी कोई ज्यादा कमा ले और पैसे खा ले

और ज्यादा खुराक इकट्ठी कर ले और ज्यादा मौज-मजा से रह ले, यह क्या जीवन का लाभ हुआ और क्या समाज के लिए इसका अनुदान मिला? सिर्फ एक आदमी की बढ़ोत्तरी का कुछ मतलब नहीं निकलता। राई बराबर भी उससे फायदा नहीं होता।

अब इसके बाद में तीसरा एक और वर्ग रह जाता है, जिसको स्वयं अध्यापक और विद्यार्थी कहते हैं। विद्यार्थी अगर ठीक तरीके से अपने आपको अनुशासन में रखना नहीं सीखें और इस बात को भूल जाएँ कि हमारे जीवन के प्राथमिक वर्ष हमारे भावी जीवन की नींव हैं, नींव अगर कमजोर बनी रही तो इमारत खड़ी नहीं हो सकती। तब इमारत खराब हो जाएगी। इमारत टूट-फूट जाएगी। इमारत तहस-नहस हो जाएगी। अगर हमारे भावी जीवन की इमारत, जो हमने सुंदर सपने के रूप में सँजोकर रखी है, अगर उसकी जड़ छोटी उम्र में विद्यार्थी जीवन से ठीक तरीके से सँभालकर नहीं रखी गयी, तो हमारी बेहतरीन इमारत नहीं

बन सकती और हम खराब जिंदगी जिएँगे। इसीलिए प्राथमिक जीवन, जिसको हम विद्यार्थी जीवन कहते हैं, एक संयम का जीवन है, एक तपश्चर्या का जीवन है, योग साधना का जीवन है। उसको योग साधना के रूप में ही जिया जाना चाहिए। विद्यार्थियों को संयम में ही रहना चाहिए। शौक-मौज करने के लिए तो कितनी ही जिंदगी पड़ी है। कोमल उम्र जो है, उस पर जल्दी-जल्दी प्रभाव पड़ जाते हैं। उस समय सिनेमा जैसे वाहियात शौक, जिसमें कि अपने देश में सिवाय किसी का नैतिक चरित्र खराब करने के और कोई उद्देश्य उनका नहीं है। ये फिल्म बड़ी उपयोगी थी। जर्मनी और दूसरे देशों ने अपनी जनता को, अपने नागरिकों को वैज्ञानिक जानकारियाँ, स्वास्थ्य संबंधी जानकारियाँ, ऐतिहासिक जानकारियाँ, विश्व की अनेक समस्याओं की जानकारियों के बारे में फिल्म उद्योग का उपयोग किया था और उनसे राष्ट्र को सुशिक्षित किया था, पर इस अभागे देश में तो सब ओर चौपट ही

चौपट हो रहा है। सिनेमा को इस बात की खुली छूट दी गई है कि लोगों के अंदर कामुकता भड़काये, अनैतिकता पैदा करे और आदमी को बुरा आदमी बनाए। यही तो शिक्षण होता है सिनेमा के अंदर। इस तरह की वाहियात किस्म की फिल्मों से सिनेमा घर भरे पड़े हैं, बच्चों का और विद्यार्थियों का काम है कि उनसे अपने आपको बचाकर रखें। उन बुरी आदतों को, जो उन सिनेमा के पात्रों में देखी जाती हैं, इन सिनेमा की तसवीरें में दिखाई जाती हैं, उनसे अपने आपका बचाव करें। ये उनका काम है, विद्यार्थियों का काम है कि अपने समय को सँभाल करके रखें। जीवन की नींव नीतियों पर रखी जाती है। अगर उन्होंने संयम से काम नहीं लिया, ब्रह्मचर्य से काम नहीं लिया और अपने आपको भड़काने वाली परिस्थितियों में रखा और कामुकता की परिस्थितियों में रखा, तो जरूर उनको ऐसी बुरी आदतों को सीखने के लिए मजबूर होना पड़ेगा, जो कि उनके शरीर को खोखला करके रख देंगी।

आज हम देखते हैं कि हमारे नवयुवकों के चेहरे पर न तेज है, न ओज, न उनकी आँखों में उम्मीदें हैं, और न उनका साहस; सारे के सारे ऐसा मालूम पड़ते हैं कि जवानी में कोई आदमी विलासी जैसे होते हैं, कामुक जैसे होते हैं, बूढ़े जैसे होते हैं, इस तरह के नवयुवक टूटे हुए, गिरे हुए, मरे हुए-से दिखाई पड़ते हैं। इसके कारण दूसरे भी हो सकते हैं, पर एक बड़ा कारण यह है कि ब्रह्मचर्य की जड़ें भीतर ही भीतर खोखली होती चली जाती हैं, बाहर से दिखाई नहीं पड़ता, वह छिपी हुई बात है, गुपचुप की बात है, लेकिन गुपचुप की बात के ऊपर से जब पर्दा उठाकर देखते हैं, तो उस नाली के भीतर बड़ी सड़न आती है। परस्पर नैतिक और अनैतिक जो क्रियाएँ की जाती हैं, उनका जिक्र करना मेरे लिए मुनासिब नहीं है, लेकिन मैं ये इशारा करना चाहता हूँ कि अवांछनीयता, जो विद्यार्थियों में पैदा होती है, कामुकता से संबंधित, गंदी किताबें पढ़-पढ़ करके और गंदी तसवीरें देख

करके, गंदी फिल्में देख करके और गंदे लोगों की सोहबत में रहकर के जो बुरी आदतें वो सीख लेते हैं, उससे उनका शरीर खोखला उस समय ही नहीं हो जाता, बल्कि सारी जिंदगी तबाह हो जाती है। बुढ़ापे का वक्त आता है, जवानी का वक्त आता है, वह किसी काम का नहीं रहता। बच्चे पैदा करते हैं, तो वो बिलकुल सड़े-गले बच्चे पैदा करते हैं और जब बुढ़ापा आता है, बुढ़ापा आने से पहले हजार बीमारियों के शिकार हो जाते हैं। आँखें कमजोर, कमर में दरद, मरे-मरे, दीखता नहीं है, कान से सुनाई नहीं पड़ता, सिर भन्नाता है। न जाने क्या-क्या दुनियाभर की बीमारियाँ इकट्ठी हो जाती हैं। ये बीमारियाँ किसी ने थोपी नहीं हैं, ये दवाओं से नहीं जा सकतीं। जो जीवन का मूलभूत था ओजस्, जो जीवन को लंबा बना सकता था और मजबूत बना सकता था, वह सारे का सारा सार उस छोटी और कच्ची उम्र में नष्ट हो जाता है, जबकि उसको छुआ भी नहीं जाना चाहिए

था, जब उसको पकने देना चाहिए था, वह हमारा पका हुआ जीवन-तत्त्व आगे जीवन की नींव को मजबूत कर सकता था, लेकिन बालकपन में ही ऐसा बिगाड़ शुरू हो गया। प्रत्येक बच्चे को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि हमको अपने शरीर की रक्षा कैसे करनी चाहिए और बुरी आदतों से कैसे बचना चाहिए? सारे का सारा समय और मनोयोग हमको अध्ययन में लगाना चाहिए, पढ़ने में लगाना चाहिए। खेलकूद हम खेलें बेशक स्वास्थ्य की दृष्टि से, लेकिन ऐसे खेलकूद नहीं होने चाहिए, जो समय की बरबादी करते हों-जैसे ताश खेलना, शतरंज खेलना, चौपड़ खेलना, इससे क्या मिलता है? इसमें कौन लाभ मिलता है? गेंद खेली जाए समझ में आता है, क्रिकेट खेल लिया, फुटबॉल खेल लिया समझ में आता है। इससे व्यायाम होता है। खेलकूदों के लिए भी समय निकाला जाए, मनोरंजन भी हो सकता है और साहस और शौर्य का शिक्षण भी हो सकता है। इस

तरह के वाहियात खेल जो जुआरी के तरीके से, जो केवल मनोरंजन के लिए किए जाते हैं, उनसे क्या फायदा? इसी तरीके से जो आजकल रेडियो और ट्रांजिस्टर इतने सस्ते और सुलभ हो गए हैं, ये बच्चों को बहुत आकर्षित करते हैं। इसमें से भी हम देखते हैं कि इसमें लोकरंजन पर ही ज्यादा ध्यान रखा जाता है, सीलोन रेडियो किसी ने सुना है, तो उसको बहुत ना उम्मीदी होगी, और वह रेडियो के दूसरे गाने जिसमें से पचहत्तर फीसदी होते हैं, अगर सुने जाएँ तो आदमी को ना उम्मीदी होती है और ये मालूम पड़ता है कि ये किसी व्यक्ति का निर्माण करने के लिए और समाज का निर्माण कररने के लिए नहीं बनाए गए हैं। यों आँसू पोंछने के लिए सारे दिन में दो-चार अच्छे गीत और दो-चार अच्छे भाषण भी आ जाते हैं, जिससे कि वो अपने चेहरे के नकाब को अच्छा बनाए रख सकते हैं। बाकी ये मालूम पड़ता है कि यह खोखला करने वाली बातें हैं। मनोरंजन का यह

भौंड़ा तरीका है। उस भौंड़े तरीके से यदि नवयुवक अपने आपको बचा करके रखें, व्यायाम किया करें, ब्रह्मचर्य से रहा करें, स्वाध्याय किया करें, ईश्वर भक्ति की बात ध्यान रखें और अनुशासन से रहें तो बहुत अच्छा होगा।

जो व्यक्ति छोटी उम्र में अनुशासन नहीं सीख सका, जिसने अनुशासन का पालन नहीं किया, वो कभी किसी आदमी को अनुशासन में नहीं रख सकता। अच्छा शिष्य ही अच्छा गुरु बन सकता है। जो अच्छा शिष्य नहीं रहा है, जो बुरा शिष्य रहा है, जो अपने अध्यापकों से लड़ता-झगड़ता रहा है और अपने अध्यापकों की अवज्ञा करता रहा है, कभी भी उसको भावी जीवन में यह मौका नहीं मिल सकता कि अगर उसको अध्यापक बनने के लिए मौका दिया जाए और अध्यापक बने, तो उसके बच्चे कहना मानें। जो बुरा लड़का रहा है, वो अच्छा बाप नहीं बन सकता और उसके बच्चे अच्छे नहीं हो सकते। ये अनुशासन छोटी उम्र में ही सीखना पड़ता है। वो

आदमी जिसने छोटी उम्र में अपने बड़ों की आज्ञा का पालन नहीं किया, अनुशासन का पालन नहीं किया और मिलिटरी डिसिप्लिन अपने जीवन में स्थापित नहीं किया, वह कभी भी आगे जा करके दूसरों को अनुशासन में रखने में समर्थ नहीं हो सकता। उस आदमी को अगर फौज का कर्नल बना दिया जाए, कप्तान बना दिया जाए, तो कभी भी अपनी सेना को अनुशासन में नहीं रख सकता, इसलिए कि स्वयं अनुशासन पालन करना सीखा नहीं।

जो गुण अपने आप में हैं, सिर्फ उन्हीं गुणों को दूसरों को आदमी सिखा सकता है। इसीलिए जिन लोगों को बड़े-बड़े काम करने हैं और दूसरों से काम लेना है, उन्हें अनुशासित बनना चाहिए मान लीजिए आपको बड़ा अफसर बनना है और आगे अपने नीचे वाले सबोर्डिनेट से काम लेना है, उनको आज्ञा पालन करने वाला बनाना है, तो इससे पहले आपको स्वयं आज्ञा पालन करने वाला बनना होगा। अनुशासन प्रिय बनना होगा। कायदे-कानून के भीतर

रहने वाला बनना होगा। मर्यादाओं में रहने वाला बनना होगा। आज बच्चों को इस तरह का शिक्षण और इस तरह की हवा नहीं दी जाती, बल्कि उच्छृंखलता की बात सिखाई जाती है।

गंभीरता से शिक्षण जिनके पास होता है, उनके पास योग्यता होती है और योग्यता ही हमेशा काउंट करती है। योग्यता ही जिसके पास होती है, वही आगे विकास कर सकता है। योग्यता जिसके पास नहीं और उलटा-पुलटा सर्टिफिकेट छीन लाए और धमका लाए और नकली सर्टिफिकेट ले आए, जाली सर्टिफिकेट ले आए, मास्टरों को धमका लिया, ये कर लिया और किसी तरह से पढ़ लिया। किताब में से एक-एक पन्ना पढ़ लिया और गैस पेपर खरीद कर ले आए, उसमें से थोड़े-से सवाल यहाँ से सीख लिए, थोड़े-से सवाल वहाँ से सीख लिए और जब काम पड़ेगा तब? जब किसी ऑफिस का इंचार्ज बनना पड़ेगा, और जब कोई बड़ा काम हाथ में आएगा और जब

अच्छे अनुवाद करने पड़ेंगे, अच्छे ड्राफ्ट बनाने पड़ेंगे, तब सारी पोल खुल जाएगी। तब बेढंगे तरह से इधर से उधर ही करते फिरेंगे। पता नहीं किताबी आदमी क्या होने वाला है? कुछ भी तो होने वाला नहीं है। उन्नति का पथ कैसे खुलने वाला है?

इसीलिए विद्या इसलिए नहीं है कि हम पास हो जाएँ, डिवीजन ले आएँ और खेलकूद पर प्रभुत्व बना लें, बल्कि विद्या इसलिए पढ़नी चाहिए कि हमारी योग्यताओं की वृद्धि हो, हमारे स्वभाव की वृद्धि हो। इस समय में केवल अनुशासन ही विद्यार्थियों के लिए आवश्यक है। राजनीति में काम करने का बहुत वक्त पड़ा हुआ है। लड़ाई-झगड़ा करने के लिए बहुत वक्त पड़ा हुआ है। सिनेमा देखने के लिए सारी जिंदगी ही भरी हुई पड़ी है। दूसरे शौक-मौज करने के लिए क्या यही वक्त रह गया है? यह नींव, नींव डालने का यह वक्त है। जीवन की फाउंडेशन मजबूत करने का यह वक्त है-

विद्यार्थी जीवन। विद्यार्थी जीवन को अच्छे से अच्छा बनाया जाना चाहिए।

शिक्षा तीन अंगों में बँटी हुई है। अभिभावक, जिनका काम है कि ऐसा वातावरण उत्पन्न करें, जिसमें बालकों का ठीक तरीके से विकास हो। अध्यापक, अपने शिक्षण के साथ-साथ अपना स्कूली पाठ्यक्रम पूरा करने के साथ-साथ में बालकों को वो बातें भी सिखाएँ, बताएँ जो उनके जीवन का विकास करने में, उनके व्यक्तित्व को परिष्कृत करने में समर्थ हैं। ये कार्य सरकारी पाठ्यक्रम को पूरा करते हुए वे अपनी तरफ से भी जोड़कर सिखा सकते हैं और सिखाया जा सकता है। इसके अलावा बच्चों का नंबर आता है। वो स्वयं भी इसको सीखने के लिए इच्छुक न हों, सीखना नहीं चाहें,अध्यापक और अभिभावकों के कार्य में सहयोग नहीं करें, उच्छृंखलता ही बरतें, मनमानी ही बरतें, किसी की सुनें ही नहीं और मनमर्जी का व्यवहार करें, तो बेचारे अध्यापक भी क्या कर सकते हैं ? ये तीनों वर्गों में बँटा हुआ है

व्यक्तित्व का निर्माण शिक्षा की व्यवस्था, भावी जीवन का उन्नयन और अपने समाज के दृढ़ होने का स्वरूप। इस सबके बारे में हम सबको ध्यान देना चाहिए और समग्र शिक्षा का विकास करने के लिए तीनों वर्गों को अपने उत्तरदायित्वों को समझना चाहिए, ताकि हमारा देश समर्थ और समृद्ध बन सके।

ॐ शांति!

मुद्रक—युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा (उ. प्र.)